IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

“शारीरकविज्ञानम्” में प्राण-तत्त्वमीमांसा

डॉ. महेश जी. पटेल,
सहायक प्रोफेसर, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर,
maheshgpatel78@gmail.com

सारांश

"शारीरकविज्ञानम्" नाम का ग्रन्थ भगवान वेदव्यास द्वारा रचित वेदान्त सूत्रों का विद्यावाचस्पति पं. मधुसूदन ओजाजी के द्वारा किया गया व्याख्यान है। इसमें श्री ओजाजी ने वेदान्त सूत्रों के आदि जगतगुरु श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य और श्री वल्लभाचार्य आदि पूर्वभाष्यकारों के भाष्यों का संक्षिप्त विवेचन करते हुए वैज्ञानिक आधार पर अपने सिद्धांत का भी निरुपण किया है। अपनी हृदयग्राहिणी शैली से संकलन करते हुए पं. ओजाजीने स्थान स्थान पर उनकी समीक्षा भी की हैं। पं. मधुसूदन ओजाजी ने वेदान्त सूत्रों की जो व्याख्या की है, उसमें उनकी अपनी द्रष्टि प्रत्येक वेदान्त सूत्र पर पारंपारिक शैली में व्याख्या लिखने की ही न होकर एक एक विषय के वेदान्त सूत्रो का संकलन करके, उन पर प्राचीन भाष्यों का अपनी भाषाशैली में सार संकलन करने की भी रही हैं और जहां जहां उन्हें नयी उदबोधनाएं प्राप्त हुई, वहां उनका भी समावेश किया गया हैं।

प्रस्तावना

वेदवाचस्पति पं. मधुसूदन ओजाजीने अपने निगमात्मक वेदविज्ञान साहित्य को ब्रह्मविज्ञान, यज्ञविज्ञान, पुराणसमीक्षा और वेदाङ्गसमीक्षा ये चार भागो में विभाजित किया है। सात उपविभाग में विभक्त ब्रह्मविज्ञान के तृतीय उपविभाग में गीताहृदयम् अर्थात् भगवद्गीतोपनिषदम् - विज्ञानभाष्यम् और ब्रह्मसूत्रहृदयम् अर्थात् "शारीरकविज्ञानम्" नाम का ग्रन्थ समाविष्ट है। इसमें उन्होने प्राण-तत्त्व की सम्यक् मीमांसा प्रस्तुत की है।

“शारीरकविज्ञानम्” में प्राण-तत्त्वमीमांसा

'शारीरक विज्ञानम्' के प्रारंभ में मंगलाचरण के पश्चाद् सर्वप्रथम 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' आदि चार सूत्रो का कथन करके 'सभी सृष्टिघाराओं का विज्ञान में ही समन्वय दिखाई देने के कारण, विज्ञान ही समस्त जगत का कारण है, 'यह पं. मधुसूदन ओजाजी प्रतिपादित करते हैं। अन्तमें पं. ओजाजी प्राणोत्पत्ति के विषय में कहते हैं कि सर्वप्रथम उत्पन्न जो आदि तत्त्व हैं, वह ब्रह्म हैं। अव्यय, अक्षर और क्षर ये तीन विवर्त ब्रह्म के है, ऐसा पं. ओजाजी मानते हैं। सृष्टि अनेक घाराओं वाली हैं। इसमें सृष्टि की दूसरी घारा में प्राण का सर्व प्रथम उत्पन्न होने का विवरण मिलता हैं। उससे 'रयि' नामक तत्त्व की उत्पत्ति बतलाई गई है। तदन्तर प्राण और रयि से समस्त चतुर्दश भुवनात्मक प्रपञ्च उत्पन्न होता है। इस धारा में प्राण तत्त्व को उत्पन्न करने वाला तत्त्व ब्रह्म को माना गया है। वही प्रजापति हैं और वही आत्मा शब्द से भी कहा जाता हैं। (शारीरिक विज्ञानम् पृ-८)

IJFANS International Journal of Food And Nutritional Sciences
Official Publication of International Association of Food and Nutrition Scientists

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

वेदमें ऋषि, पितर, देव, असुर और गन्धर्व इन पांचो वैदिक तत्त्वो की समष्टि को सूक्ष्म जगत कहा गया है। और इस सूक्ष्म जगत का प्रतिपादन करना ही वेद का परम लक्ष्य हैं। इन ऋषि आदि पांच तत्त्व समज मैं आ जाते हैं। वैदिक ऋषि और देवता प्राण विशेष है।

जिस प्रकार आज के विज्ञान का मुख्य आधार विद्युत शक्ति हैं, उसी प्रकार वैदिक विज्ञान प्राणतत्त्व को मूलाधार मानकर प्रवृत्त होता हैं। वैदिकविज्ञान में प्राण और रयि ये दोनो ही मूल तत्त्व हैं। इनमें भी प्राण प्रमुख हैं और रयि प्राण के अधीन हैं। प्रश्नोपनिषद् (१-४-५) में कहा गया है कि, "प्रजाकामो वै प्रजापतिः, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते, रयिश्च, प्राणश्च, इत्येतौ मे बहुघा प्रजाः करिष्यते इति। आदित्यो ह वै प्राणः, रयिरेव चन्द्रमाः रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त चामूर्त च। तस्मान्मूर्तिरव रयिः।"

अर्थात् "प्रजापतिने प्रजा की इच्छा की, उसने तप किया, तप से रयि और प्राण का युगल उत्पन्न किया और सोचा कि ये दोनों मेरे लिए अनेक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करेंगें। इनमें रयि चन्द्रमा हैं और प्राण आदित्य (सूर्य) है। ये जो मूर्त और अमूर्त पदार्थ है, वह सब 'रयि' हैं। "इससे यह सिद्ध होता है कि प्राणो का आधार सूर्य हैं। और 'रयि' का आधार चन्द्रमा है। 'रयि' से सर्व पिण्डात्मक मूर्तियां उत्पन्न होती हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों की परिभाषा के अनुसार हम प्राण को एनर्जी (ENERGY) या फोर्स (FORCE) और 'रयि' को मैटर (MATTER) कह सकते हैं। क्योंकि जगत के जो सभी भौतिक पदार्थ दिखाई देते हैं, ये सभी का उपादान कारण 'रयि' ही हैं और 'रयि' को घारण करने वाली शक्ति ही प्राण हैं।

पृथिवी से निकाला गया पंङ्क में से हम पेट्रोल, डीजल, आदि अलग करते, उसके बाद जो रहता है- वो डामर कहलाता है, यहां हम कह सकते हैं की यन्त्रो का जो प्राण हैं वह 'रयि'से आता हैं आपकी काई नई खोज नहीं है। हम जो पत्र, पुष्प, फल, अन्न आदि का भोजन के स्वरुप में और जल, दुघ आदि पेय के स्वरुप में लेते हैं। उसका रुधिर बनता हैं। जो शरीर को चलयमान करता हैं, जिसे हम प्राणकह सकते हैं। क्या समग्र विश्व में ऐसा कोई यन्त्र जिसमें पत्र, पुष्प, फल, अन्न आदि डालो और रुधिर वन सके ? इत्यादि.

वैदिक परिभाषा अनुसार शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गन्ध रहित जगत को न घेरने वाला तत्त्व ही प्राण हैं। वेद के ये 'रयि' और 'प्राण' तत्त्व है, वह क्रमशः स्थूलता प्राप्त करके 'अग्नि' और 'सोम' नाम से वेद में कहे गये हैं। इनसे ही संपूर्ण जगत उत्पन्न होता हैं। जैसा कि बृहज्जाबालोपनिषद् (२-४) में कहा है कि 'अग्निसोमात्मकं जगत्।' इनमें अग्नि प्राण है और सोम 'रयि' है। एक जगह उपनिषद में यह भी कहा गया है कि प्राण ही सबसे आदि में था और वही क्रमशः इस स्थूल जगत के रुप में विकसित हुआ । इस प्राण की पांच अवस्थाओ या पांच भेद हैं, जिन्हे वेद में ऋषि, पितर, देव, असुर और गन्धर्व कहा गया हैं। इन पांचो में ऋषि प्राण ही मुख्य है, जैसे शतपथ ब्राहमण (६-१-१-१) में "असद् वा इदमग्र आसीत्, तदाहुः किं तद् असदासीद्, ऋषयो वाव तेऽङ्ग्रेऽसदासीत् । तदाहुः के ते ऋषय इति, प्राणा वा ऋषयः । अर्थात् सबसे पहले सृष्टि के आदि में 'असत्' था। जिज्ञासा हुई, वह 'असत्' क्या है ? उत्तर मिला की

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

ऋषि ही असत् है। पुनः आकांक्षा हुई कि 'ऋषि तत्त्व क्या है तत्त्व क्या है ? समाधान हुआ प्राण ही ऋषि है।

ब्रह्म ही जगत का कारण हैं, अचेतन प्रकृति या प्रधान आदि नहीं, ऐसा शंकराचार्यजी का कथन हैं। इस विषय में शारीरकविज्ञानम् के रचयिता पं. मधुसूदन ओजाजी कहते हैं कि, 'स्वाप्यय' सूत्र की व्याख्या में निहित 'प्राज्ञ' शब्द 'अप्पय' अधिकरणपरक नहीं समजा जा सकता। कौशीतकी उपनिषद् में कहा है कि, 'यः प्राणः सा प्राज्ञ, या प्राज्ञ स प्राणः।

अर्थात् जो प्राण है वह प्राज्ञ हैं, जो प्राज्ञ है वह प्राण हैं।'

कौशीतकी उपनिषद् के उपरोक्त वाक्य में प्राणमय आत्मा को ही प्राज्ञ कहा गया है। अतः इन्द्रियों के अधिष्ठाता प्राण के लिए 'प्राज्ञ' शब्द मानना चाहिए, अप्पय के लिए 'प्राज्ञ' शब्द मानना अनुचित है। इसतरह विलीन होनेवाला जो तत्त्व है वह चेतन ही है, यह सिद्ध होने पर भी जहां लीन होता है उसका उक्त उपनिषद् वाक्य से चेतनत्व सिद्ध न होने पर शंकराचार्यजी का उपरोक्त आदि कथन चिंतन की अपेक्षा रखता हैं।

सगुण और निर्गुण ये दोनों ब्रह्म को मानते हुए, पं. ओजाजी 'शारीरकविज्ञानम्' (१-१-३,पृ.-८४) में ब्रह्मको जगत की उत्पत्ति का मूल तत्त्व मानते हुए कहते है कि "नभसोऽन्तर्गतस्य तेजसोऽशंमात्रमेतद् यदादित्यस्य मश्ये इवेत्यक्षण्यग्नौ च एतद् ब्रह्म । एतदमृतम्। एतद्भर्गः"। इति ।

अर्थात् "आकाश के अन्तर्गत तेज का यह अंश मात्र हैं, जो सूर्य में हैं, जो चन्द्र में हें और जो अग्नि में हैं। यह ब्रह्म है। यह अमृत है। यह तेज है।"

शारीरक विज्ञानम् में पं. ओजाजी कहते हे कि "तस्मादोमित्यनेनैनतदुपासीतापरिमितिं तेजः । तत् त्रधाभिहि तमन्नादादित्ये प्राणैः" इति च। तस्मात्परमेश्वर एवायमन्तः पुरुषत्वेनेह विवक्षित इति बोध्यम् । (शारीरक विज्ञानम् पृ.-८४)

अर्थात् "अतः ३० इस पद से इस अपरिमित तेज की उपासना करनी चाहिए। वह तीन प्रकार का कहा गया है। अग्नि में, आदित्य में और प्राण में।

इस प्रकार ब्रह्म से ही प्राण ही उत्पत्ति होती है

श्रीमद्भगवद्गीता (अ.-१५-१४) में प्राण के प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान ये पांच प्रकार बतलाये गये है।

अत एव प्राणः (ब्रह्मसूत्र-१-१-२३)

शारीरक विज्ञानम् (१-१-२२) में परमेश्वर ही आकाश शब्द से निरुपित हैं, यह सिद्ध करने के बाद पं. मधुसूदन ओजाजी प्राण परब्रह्म है, यह प्रतिपादित करने के लिए 'अत एव प्राणः' सूत्र देते हुए, छांदोग्य उपनिषद् (१-११-४ और ५) की श्रुति देते हुए कहते है किं छांदोग्य उपनिषद् के उद्गीथ प्रकरण में प्रस्तोता के प्रस्ताव में जो देवता प्रस्तुत है वह कौन है, यह प्राण है ऐसा कहा गया है। यह समस्त भूत प्राण में ही प्रवेश करते हैं, प्राण से ही प्रादुर्भूत होते है ।

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

छांदोग्य उपनिषद् (१-११-४ और ५) की यह श्रुति में प्राण शब्द से पांच रुपों वाला वायु का विकार विवक्षित है या परब्रह्म विवक्षित हैं। ऐसा सन्देह करने वाले के प्रति कहा गया है कि इसीलिए प्राण जगत का कर्ता परमेश्वर हो सकता हैं। यही परमेश्वर का कर्म चिह्न दिखाई देता है, कि वह भूतो का प्रभव और प्रलय हैं।)

यहाँ प्रश्न यह होता है कि प्राण शब्द के वायु विकार रुप मुख्य प्राण के अर्थ में भी प्रभव और प्रलय का विधान हैं। पं ओजाजी इसके समर्थन में कहते हैं कि

"यदा वै पुरुष स्वपति प्राणं तर्हि वागण्येति प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः स यदा प्रबुध्यते प्राणादेवाधि पुनर्जायते" (शारीरक विज्ञानम् पृ०-८८)

अर्थात् "जब पुरुष शयन करता है तब उसकी वाणी प्राण में विलीन होती हैं, उसके नेत्र, श्रोत्र तथा मन प्राण में विलीन होते हैं। जब पुरुष निद्रा से उठता है, तब प्राण से ही इनका उद्गमन होता है।"

प्रत्यक्ष प्रमाण से हम अनुभव कर सकते है किं जब शयनकाल में इन्द्रियो की वृत्तियां लुप्त हो जाती है और जागने पर पुनः उसका प्रादुर्भाव होता है, प्राण की वृत्तियां सुषुप्त और जाग्रत ये दोनो अवस्थाओं में लुप्त नहीं होती ।

उपरोक्त सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है किं उद्गीथ और प्रतीहार देवता आदित्य के अन्न हैं। वे कार्यब्रह्म है, उनके साथ कथित होने के कारण परमेश्वर न मानकर, इस प्रस्तुत देवता को ही कार्यब्रह्म मानना उचित है।

उपरोक्त सन्दर्भ में समस्त इन्द्रियो के साथ शरीरधारी जीव से आवेष्टित भूतो की प्राणो से उत्पत्ति कही गई हैं, यह विशेषता हैं। शेष वाक्य के बल से प्राण शब्द के ब्रह्मपरक अर्थ की प्रतीति में आदित्य के अन्नरुप का जो साथ में कथन है वो कोइ महत्त्व रखता नही हैं। इसलिए जहां परमेश्वर के चिह्न श्रुति वाक्य में पाये जाते है, वहां यह ब्रह्म ही प्राण शब्द का प्रतिपाद्य अर्थ है, यह समझना चाहिए । इसीलिए निम्नोक्त वेदवाक्य से प्राण शब्द का व्यवहार ब्रह्म समझना चाहिए ।

"यदा सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन पश्यति अथास्मिन् प्राणः एवैकधा तदैनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाप्यैति ।" अर्थात् "शयनावस्थामें जब कोई स्वप्न नहीं देखता, उस कालमें केवल प्राण ही रहता हैं, तब अपने सब नामो के साथ वाणी इसमें विलीन हो जाती हैं।"

उपरोक्त वेद वचनों में प्राण शब्द का व्यवहार ब्रह्म के लिए ही समजना चाहिए, अन्य स्थलों में भी प्राण शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए पाया जाता हैं। जैसे

"प्राणस्य प्राणः।" अर्थात् "वह प्राण का प्राण है। (शारीरक विज्ञानम्, पृ०-८८)

"प्राणबन्धनं हि सोम्य मनः" अर्थात् हे सोम्य मन प्राण का बन्धन है। (शारीरक विज्ञानम्, पृ०-८८)

इसतरह उपरोक्त स्थानों से यह सिद्ध होता हैं किं प्राण यहाँ शब्द परमेश्वर का प्रतिपादन करता हैं।

IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

प्राणस्तथानुगमात् (१-१-२८)

पं. मधुसूदन ओजाजी का मानना है कि विशेष स्थलों पर परमेश्वर को बतलाने के लिए अन्तः पुरुष शब्द, आकाश शब्द, प्राण शब्द, ज्योति शब्द, गायत्री इतयादि छन्द शब्द आदि अनेक शब्द प्रयोग में लाऐ गये हैं, ऐसा सिद्ध होता है। इसके सन्दर्भ में पं. ओजाजी कौषीतकी ब्राह्मण उपनिषद का संदर्भदेतें हुए कहते है कि ब्रह्म समन्वय होने के कारण प्राण शब्द भी ब्रह्म वाचक हैं।

"उसने कहा मैं प्रज्ञात्मा प्राज्ञ हूं, मेरे इस आयु अमृत रुप की उपासना करो, यह प्रज्ञात्मा प्राण ही इस शरीर का परिग्रह करके उसे उठाता है। वाणी की जिज्ञासा नहीं करनी चाहिए, वक्ता को जानना चाहिए। वह यह प्राण ही प्रज्ञात्मा, आनन्द, अजर, अमृत है।" (ब्रह्मसूत्र १-१-२८) इसतरह प्राण का प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियां वेद और उपनिषद् में पायी जाती हैं। लेकिन उपरोक्त वाक्य से प्राण

शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ है, इसमें सन्देह है, क्योंकि

प्राण शब्द से केवल वायु का ही अभिप्राय है !

इससे देवता विवक्षित है !

यह प्राण शब्द क्या जीव परक है !

या फिर प्राण शब्द का अर्थ परब्रह्म है !

क्योंकि प्राण शब्द से ईन सभी की पहचान यहां दिखाई देती हैं। निर्देशन के लिए

"इस शरीर का परिग्रह करके उठता है।" यह वायु की पहचान हैं।

"वाणी की जिज्ञासा नही करनी चाहिए, वक्ता को जानना चाहिए।" वह जीव की पहचान है।

"आनन्द, अजर, अमृत है।" यह ब्रह्म की पहचान हैं। इस तरह निश्चय न होने के कारण व्याकुल पुरुष

के लिए कहा जाता हैं। (शारीरक विज्ञानम् पृ.-९५)

यहां "समन्वय के कारण प्राण शब्द का अर्थ परब्रह्म है।"

जब पूर्वापर प्रसङ्ग का पर्यालोचन किया जाता है, तब शब्दो के अर्थ का समन्वय ब्रह्म में ही समजा जाता है मनुष्य के अत्यंत हित सम्पादक के रुप में उपदिष्ट प्राण का अर्थ परमात्मा से भिन्न हो ही सकता नहीं ।

उसको जानकर ही मृत्यु का तरण करता है, निकलने के लिए अन्य मार्ग नहीं है। ईत्यादि मन्त्रो से यह सिद्ध होता है किं परमात्मा का ज्ञान ही मानव का सर्वाधिक हित सम्पादक है । (शारीरक विज्ञानम् - पृ.-९५)

"वह जो मुझे जान गया उसका किसी लौकिक कर्म चाहे वो चोरी हो या भ्रूणहत्या ही क्यों न हो, कुछ बिगाड सकता नहीं।" यह सब बातें प्राण को ब्रह्म समजने पर ही घटती हैं।

IJFANS
International Journal of Food And Nutritional Sciences
Official Publication of International Association of Food and Nutrition Scientists

उस परावर का दर्शन होने पर जीव के कर्म क्षीण हो जाते हैं। इत्यादि वेदवाक्यो में सव कर्मो के क्षीण हो जाने का कारण ब्रह्मविज्ञान ही सिद्ध होता हैं, और प्रत्यात्मा भी ब्रह्म के पक्ष में ठीक उतरती हैं। क्योंकि यदि उपर्युक्त सन्दर्भ में प्राण का अर्थ वायु लिया जाये तो जो अचेतन है, वह प्रत्यात्मा कैसे कहा जा सकता है।

"आनन्द अजर अमृत" यह उक्ति भी ब्रह्म के अतिरिक्त अन्यत्र किसीके बारे मे घटित होती सम्भव नहीं दिखाई देती है।

"वह अच्छे कार्य से बडा नही हो जाता और न ही तुच्छ कार्य से छोटा हो जाता है। वही साघु कार्य करता हैं और वही असाधु कार्य करता हैं। यह लोकपाल हैं, यह लोकाधिपति हैं, यह लोकेश है।"

प्राण शब्द का मुख्यार्थ वायु का आश्रय लेने से ये सब उक्तियां असंगत हो जाती हैं, पर ये सब उक्तियां परब्रह्म का यहां ग्रहण करने पर संगत हो जाती है। अतः यहां प्राण शब्द का मुख्यार्थ लोक वायु अभिप्रेत नहीं हैं किन्तु ब्रह्म ही अभिप्रेत होता हैं।

शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् । (ब्रह्मसूत्र-१-१-३०)

प्राण शब्द का अर्थ देवता विशेष ही क्यों न स्वीकृत किया जाय। पूर्व में भी यह कहा गया है कि वक्ता के स्वयं उपदेश देने से यहां आकारधारी देवता विशेष ब्रह्म के अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता अपितु यहा प्राण शब्द का अर्थ ही प्रतिपादित होता हैं। श्रुति में ब्रह्म के लिए "वह बोलता नहीं, वह मन रहित है" एसा कहा हैं। यहा ब्रह्म का 'मैं' कहते हुए कुछ भी असम्भव हो जाता है।

'त्रिशीर्षो के त्वाष्ट्र को मेंने मारा, अरुन्मुख यतियों को शालावृको को प्रदान किया'।

ये आत्मतत्त्व (स्वयं के कार्य) इस प्रकार के धर्मो से युक्त है, जो ब्रह्म में असम्भव हैं। (यहाँ प्राण का अर्थ वक्ता इन्द्र के रुप में करने पर) यहां इन्द्र का प्राणत्व उसके बलशाली होने के कारण समजा जा सकता है। श्रुति में कहा भी हैं कि

'प्राणो वै बलम् । (शारीरक विज्ञानम् पृ.-९६) अर्थात् 'प्राण निश्चय ही बल का नाम हैं। 'निरुक्तमें कहा है कि-'या च काचिदूवलकृतिरिन्द्रकमैव तद् (शारीरक विज्ञानम् पृ.-९६) अर्थात् 'जो कोई भी बलशाली रचना है वह इन्द्र का कार्य हैं।'

इससे यह स्पष्ट होता है किं वेद में बल के देवता के रुप में इन्द्र प्रसिद्ध था । देवता को ज्ञानवाले और बलवाले बताते हुए यास्काचार्य 'निरुक्तमें कहते हैं कि 'अप्रतिहतज्ञाना देवता' अर्थात् 'देवता अप्रतिहत (बिना रुकावट के) ज्ञानवाले होते हैं। (शारीरक विज्ञानम्, पृ.-९८)

ऐसा कहने पर देवताओं का प्रज्ञात्मत्व और हिततमत्व भी सिद्ध होता है। अतः देवता (इन्द्र) शब्द का अर्थ प्राण प्रतिपादित होता हैं। अपितु प्राण शब्द का अर्थ विशेष देवता (इन्द्र) ही हैं, ब्रह्म नहीं । ऐसा जो पूर्वपक्ष उपस्थित होता है, उसके उत्तर में पं. ओजाजी ब्रह्मसूत्र-१-१-२९ की व्याख्या मे समजाते हैं।

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

'न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसंबन्धभूमा द्यस्मिन् ।' (ब्रह्मसूत्र-१-१-२९) शारीरक विज्ञानम् में उपरोक्त ब्रह्मसूत्र (१-१-२९) की वृत्ति देते हुए पं मधुसूदन ओजाजी कहते हैं कि 'अध्यात्मसंबन्धभूमा हमास्मिन् । अस्मिन् हमध्याये बाहुल्येन प्रत्यगात्मसंबंधो दृश्यते । शारीरक विज्ञानम्, पृ.-९६) अर्थात् इस प्रकरण में अध्यात्म की अधिकता है। इस अध्याय में प्रधानता से प्रत्यगात्मा का सम्बन्ध देखा जाता है।

'यावद्वस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुरिति' अर्थात् 'इस शरीर में जब तक प्राणो का निवास हैं, तब तक आयु हैं।'

उपरोक्त वाक्य में प्रत्यग् रुप प्रज्ञात्मा की आयु के प्रदान और उपसंहार को दिखाया जा हा हैं। यहाँ परोक्ष देवता विशेष का कोई प्रसंग हैं। प्राणो को ही मोक्ष की प्राप्ति होती हैं। इसलिए ईन्द्रियों के आश्रित प्राणो को दिखाया जाता है।

इस प्रकार भूत मात्राएं प्राण में अर्पित हुई। 'यह प्राण आनन्द, अजर, अमृत हैं, वह मेरी आत्मा है, ऐसा समजे'

इस प्रकार विषय और इन्द्रियो के व्यवहार से अनाकान्त प्रत्यगात्मा का ही उपसंहार में विवरण प्राप्त होता हैं। ये सब बाते परोक्ष शरीरवाले देवताओं में घटित होती नही हैं। "अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः" अर्थात् 'यह सब अनस्यूत आत्मा ब्रह्म हैं।'

इस अन्य श्रुति वाक्य के साथ सामञ्जस्य होते हुए, इस प्रत्यगात्मा का ब्रह्म के साथ एकत्व समजना संभव होता हैं। इसीलिए आध्यात्मिक संबंध की अधिकता के कारण प्राण आदि शब्द देवता आदि के नहीं किन्तु ब्रह्म के ही निर्देशक है, यह प्रतीत होता है। तब उक्त मन्त्रमें जहां अहम् (में) कहते हुए विधान हुआ हैं, वह तो शास्त्र की दृष्टि से वामदेव के समान समजना चाहिए। यहां इस प्रकार की संगति हैं कि देवता स्वरुप वाला ईन्द्र 'में ब्रह्म हूं', 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वेद वाक्य से संसिद्ध ऋषि दृष्टि से अपने स्वरुप को परमात्मामय देखता हुआ उपदेश देता हैं किं 'तद्वैतत्त पश्यन्' अर्थात् 'तुम मुझे ही जानों' जैसे (अन्य मन्त्र में) " स्वयं को ब्रह्म अनुभव करते हुए, ऐसा देखते हुए वामदेव ने कहा किं 'अहं मनुरभव सूर्यश्चेति तद्वत' अर्थात् 'में हीं मनु था, और में ही सूर्य था' (शारीरक विज्ञानम्, पृ.-९७)

इस प्रकार का सन्दर्भार्थ यहा भी समझना चाहिए । 'तद् यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्' अर्थात् 'देवताओं में जिस जिस को ज्ञान हुआ वही ब्रह्म हो गया।'

उपयुक्त श्रुति वाक्य के प्रकाश में भी इन्द्र को परमात्मा समझने में आपत्ति नहीं होती। और त्वष्टा के वध आदि प्रसंगो में कहा हैं किं 'मैं ऐसे कर्मो का सम्पादक हूं, इसीलिए तुम मुजे जानों'

यहा ज्ञातव्य देवता स्वरुप इन्द्र की स्तुति के लिए कथन हैं, ऐसा अभिप्राय लेना न चाहिए पर ज्ञान की प्रसंशा हैं ऐसा अभिप्राय लेना चाहिए। ऐसे क्रूर कर्म करने पर भी ब्रह्मस्वरुप में स्थित मेरा एक बाल भी बाका नहीं होता है, तो अन्य जो कोइ भी मुजे जान लेता है, उसका

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

भी संसार कुछ नहीं बिगाड सकता है। यह विज्ञान की श्रुति हैं। ज्ञातव्य तो ब्रहम ही हैं। इससें " मैं प्रज्ञात्मा प्राण हूं" यह सिद्‍ध होता है।

प्राण शब्द का अर्थ जीव मानना चाहिए, यह पक्ष सामने आता हैं कि प्राण शब्दार्थ के सन्दर्भ में उक्त रीति से आध्यात्मिक संबंध की अधिकता के द्‍वारा रागादि कारणो से संयुक्त कार्यो के द्‍वारा सम्पादक के अध्यक्ष जीव को समजने के लिए उक्त सन्दर्भ को मानना ठीक होगा। यहाँ जीव और प्राण के चिह्‍न भी दिखाई देते ही हैं। प्राणो के संवाद में वाणी आदि प्राणो के निरुपण मे ओजाजी श्रुति देते हैं किं

"तान् वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्‍यथ अहमेवैवत् पञ्चघात्मानं प्रविभज्यैतद्‍वाणमवष्टभ्य विधारयामी" (शारीरक विज्ञानम्, पृ.-९९)

अर्थात् उससे वरिष्ठ प्राण ने कहा, तुम त्रस्त मत हो, में स्वयं को पांच रुपो में विभक्त करके इस शरीर को स्थिर करके इसको धारण करता हूं"

उपरोक्त श्रुति वाक्य सें मुख्य प्राण के धर्म का ज्ञान हो रहा है, उसी शरीर धारणरुप मुख्य प्राण के चिह्‍न का विधान है। प्रज्ञात्मा प्राण ही शरीर को ग्रहण करते हुए उठता है, अतः जीव में चेतना के कारण प्रज्ञात्मता भी सिद्‍ध होती ही हैं। मुख्य प्राण में भी उक्त निर्देश प्रज्ञा के साघन अन्य प्राण का आश्रय होने से युक्तियुक्त हैं।

मुख्य प्राण और प्रज्ञात्मा दोनों का साथ साथ व्यवहार होने से अभेद और स्वरुप से भिन्न होने को कारण भेद का निर्देश दिखाई देता है। ये दोनों कथन तर्कसंगत हैं। इसके समर्थन मैं पं. ओजाजी निम्नलिखित श्रुति देते हुए कहते है कि "यो वे प्राणः सा प्रज्ञा, या वै प्रज्ञा स प्राण। सह ह्येतावस्मिन् शरीरे वसतः सहोत्कामत" इति। (शारीरक विज्ञानम्, पृ.-९९) अर्थात् 'जो प्राण है, वह प्रज्ञा हैं, जो प्रज्ञा है, वह प्राण है, ये दोनो इस शरीर में साथ रहते है तथा साथ शरीर से बहार निकलते हैं ।

उपरोक्त श्रुति से यह सिद्‍ध होता है किं प्राण और प्रज्ञा में अभेद हैं और भेद भी हैं। यदि यहां प्राण शब्द का अर्थ ब्रहम लिया जाये तो कोन किससे भिन्न होगा ? अतः यहां जीव तथा मुख्य प्राण में से कोई एक या उन दोनो की प्रतीति होती है। यहाँ परब्रहम की प्रतीति होती नहीं। यह पक्ष उठाना अनुचित हैं। क्योकिं उपासना का जीवोपासना, मुख्य प्राणोपासना और ब्रहमोपासना ये तीन भेद हैं। और पुनः यह प्रश्न होता है किं क्या ये तीनो उपासना सिद्‍ध होगी, जो अनुचित है। इसके सन्दर्भ में पं. ओजाजी श्रुति देते हुए कहते है किं 'मामेव विजानीहीत्युपक्रम प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्व इत्युक्त्वाऽन्ते स एष प्राण एव प्रज्ञात्माऽऽनन्दोऽजरोऽमृत' (शारीरक विज्ञानम्, पृ.-९९) अर्थात् "मुझे ही जानो" ऐसा कहकर विषयारम्भ के पश्चाद् 'में प्रज्ञात्मा प्राण हूं, उसी मुझे आयु अमृत मानकर मेरी उपासना करो' ऐसा कहकर अन्त में 'यह वह प्राण ही प्रज्ञा आत्मा वाला आनन्द, अजर, अमृत हैं।

ऐसा कहकर समजाया गया है। उपक्रम तथा उपसंहार से एक में ही तात्पर्य का निश्चय होता है। वहाँ उपस्थित जो चिह्‍न है। उनमें ब्रहम का परिचायक चिह्‍न ही प्रबल होता है, क्योंकि

सभी परमात्मा के ही आश्रित है। यहां जीव में या मुख्य प्राण में, या देवता के स्वरुप में वायु में सर्वत्र ब्रहम का ही योग विद्यमान है। अतः इस परमात्मा में सभी धर्मो का उपचार से समावेश हो जाना सम्भव हैं। ब्रहम के स्वरुप को अन्यत्र अन्वित करना सम्भव नहीं हैं, क्योकि अन्य कोइ भी तत्व ऐसा नहीं जो सर्वधर्मात्मक हो। अतः उनमें सर्व धर्मो का समन्वय सम्भव दिखाई देता नहीं।

अथवा यहाँ भी संभावित अर्थ हो सकता हैं कि एक ही ब्रहम की तीन विधियां से यहाँ उपासना कही गई है, प्राण घर्म से, प्रज्ञा घर्म से और स्वधर्म से।

मुख्य प्राण का भिन्न तत्त्व होना

प्राणधर्म का कथन करते हुए पं. मधुसूदन ओजाजी कहते हैं कि

प्राणधर्म - "आयुरमृतमित्युपास्व। आयुः प्राणः। तस्मादेतदेवोक्थमुपासीत" इति प्राणधर्मः।

अर्थात् "आयु की अमृत के रुप में उपासना करो। आयु ही प्राण हैं। इसिलिए इसी उक्थ की उपासना

करनी चाहीए ।" यह प्राणधर्म का कथन हुआ ।

प्रज्ञाधर्म- "प्रज्ञा के लिए जिस प्रकार का समस्त भूत एक हो जाते हैं उसकी व्याख्या की जाती हैं।" ऐसा उपक्रम करके, इसके वाक् नाम के ही एक अङ्ग का दोहन किया, प्रज्ञा से वाणी पर आरोहण करके, वाणी से सभी नामो को प्राप्त करता है।" इसिलिए यह कथन प्रज्ञाघर्म का है।ब्रहमघर्म "भूत मात्राएं प्रज्ञामात्राओ में अर्पित हुई, प्रज्ञा मात्राएं प्राण में अर्पित हुई, वह प्राण ही प्रज्ञात्मा, आनन्द, अजर तथा अमृत हैं।" इसिलिए यह कथन ब्रहमघर्म का हैं।

श्रुति वाक्यो में अन्यत्र भी" जैसे मनोमय प्राण शरीर हैं" इत्यादि उपाधि धर्मो से ब्रहम की उपासना का विधान हैं, इसी तरह ब्रहम की ही यहां दो उपाधियो के घर्मो से एक ही उपासना विहित है। अतः ईतने से यहां प्राण शब्द से अन्यपरत्व संभव नही हैं। इसिलिए यहां प्राण शब्द का अर्थ ब्रहम ही हैं, यह सिद्ध होता हैं। इस तरह पं. मधुसूदनजीने इस 'शारीरक विज्ञानम्' ग्रंथ में जहा जहा प्राण शब्द आता है वहा वहा प्राण शब्द का अर्थ ब्रहम ही प्रतिपादित किया है।

पं. मधुसूदन ओजाजीनें प्राण के सम्बन्ध में प्राण की उत्पत्ति, संख्या, परिमाण श्रेष्ठता, उसके स्वरुप के साघन, प्राणो की पांच वृत्तियां, प्राणो का देवताओं का अधिष्ठान होना, प्राणो का जीव में अधिष्ठान होना, मुख्य प्राण का भिन्न तत्त्व होना आदि का द्वितीय अध्याय में विशेष विवेचन किया है।

'शारीरकविज्ञानम्' के प्रथम अध्याय में ऐसे एनेक शब्द का प्रयोग हैं। जैसे आत्मा, अन्तरात्मा, आकाश, प्राण, ज्योति, छन्द, अत्ता, गूढोत्मा, चाक्षुष, अन्तर्यामी, भूतयोनि, वैश्वानर, आदि । इन शब्दो के विचार में पूर्व पक्ष और उत्तर पक्षो के द्वारा ये शब्द परब्रहम के ही प्रतिपादक हैं, यह सिद्धांत पं. मधुसूदन ओजाजीने स्थिर किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ

IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 10, Issue , 03 2021

(१) शारीरक विज्ञानम् (प्रथम एवम् द्वितीय भाग) डॉ.शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, राजस्थान पत्रिका, जयपुर, प्रथम संस्करण, १९९०.

(२) ब्रह्मसिद्धान्त, पं. देवीदत्त शर्मा चतुर्वेदी, राजस्थान पत्रिका, जयपुर, प्रथम संस्करण, १९९०.

(३) वैदिक विज्ञान, श्री गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, २००५.

आसिस्टन्ट प्रोफ़ेसर, अनुस्नातक संस्कृत विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर, आणंद, गुजरात, maheshgpatel78@gmail.com